भारत प्रगति के पथ पर: दैनिक यात्रियों के ब्लैक बॉक्स की गुत्थी को सुलझाना
India on the Move: Unravelling the Black Box of Commuting

एस. चंद्रशेखर
S. Chandrasekhar
October 20, 2014

पिछले कुछ दशकों में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में आने-जाने वाले दैनिक यात्रियों की संख्या में जबर्दस्त वृद्धि हुई है. इसमें छोटे-मोटे काम करने वाले कामगारों की सेवा का वह क्षेत्र भी शामिल है जिनके काम का कोई पक्का ठिकाना नहीं होता. ये लोग जोखिम उठाकर भी काम पर जाते हैं और यह मानते हैं कि आप्रवासन अब पुरानी बात हो गई है और दैनिक यात्रा उनके लिए खिलवाड़ बन गई है, लेकिन अब समय आ गया है कि ऐसे श्रमिक जो एक-से अधिक बार कहीं आते-जाते हैं, आप्रवासन-केंद्रिक हो गए हैं.ऐसे आप्रवासियों में दैनिक यात्री भी शामिल हैं.

ग्रामीण-शहरी, शहरी- ग्रामीण और उन दैनिक यात्रियों को भी मिलाकर जिनके काम का कोई पक्का ठिकाना नहीं होता, 1993-94 और 2009-10 के दौरान दैनिक यात्रियों की संख्या में लगभग चार गुना वृद्धि हुई है और ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच आने-जाने वाले दैनिक यात्रियों की संख्या 6.34 मिलियन से बढ़कर 24.62 मिलियन हो गई है. रोज़गार और बेरोज़गारी से संबंधित ये अनुमानित आँकड़े राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के सर्वेक्षण पर आधारित हैं. आश्चर्यजनक बात तो यह है कि इस वृद्धि पर नियमित रूप में नज़र रखी जा रही है. इन अनुमानित आँकड़ों में वे यात्री शामिल नहीं हैं, जो व्यक्तिगत स्तर पर गाँवों से होते हुए ग्रामीण इलाकों के अंदर या फिर शहरों के ही भीड़-भाड़ वाले इलाकों के अंदर (जैसे मुंबई के महानगरीय क्षेत्र के पाँच ज़िलों के अंदर) या शहरों से गुज़रते हुए (जैसे बर्धमान से हावड़ा के बीच) या राज्यों से गुज़रते हुए आते-जाते हैं, जैसा कि राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में देखा जा सकता है. साफ़ तौर पर कहा जाए तो भारत के बड़े-बड़े शहरों के भीड़-भाड़ वाले इलाकों में काम के ठिकाने पर आने-जाने के लिए जो समय लगता है या फिर जितनी दूरी तक आना-जाना होता है, उसकी चर्चा तो सार्वजनिक बहसों के दौरान होती है, लेकिन उसके कोई आँकड़े नहीं रखे जाते. यही कारण है कि इसके परिमाण को प्रमाणित नहीं किया जा सकता.

बहुत समय तक तो भारतीय नीति-निर्माता और नगरों के योजनाकार यह मानते चले आए थे कि भारी मात्रा में आप्रवासन हो सकता है, लेकिन 2001-11 की दो जनगणनाओं के बीच की अवधि में अपेक्षित मात्रा में आप्रवासन नहीं हुआ. नई दिल्ली स्थित नीति अनुसंधान केंद्र के अनुसंधानकर्ता कन्हु चंद्र प्रधान का अनुमान है कि शहरी आबादी की वृद्धि में 24 प्रतिशत से कम आबादी की वृद्धि का कारण आप्रवासन हो सकता है. 2001-11 के बीच शहरी आबादी की वृद्धि में शुद्ध ग्रामीण-शहरी आप्रवासन 21 प्रतिशत हुआ.

यदि काम के लिए दूर जाने वाले दैनिक यात्रियों से संबंधित जानकारी का आधार केवल भारत की जनगणना को ही माना जाए तो दैनिक यात्रियों की तुलना में आप्रवासन में हुई वृद्धि में अंतर्विरोध दिखाई देगा. विडंबना यो यही है कि सन् 2001 की भारत की जनगणना के लिए उपलब्ध दस्तावेज़ों के अनुसार यह प्रचारित किया गया कि "जो भी व्यक्ति अपने काम के लिए जितनी यात्रा करता है और जिस सवारी का इस्तेमाल करता है उसका संबंध गैर-खेतिहर कामों के लिए ही होता है." इससे एक नया सवाल पैदा हो गया है. किन्हीं अज्ञात कारणों से उनके द्वारा तय की गई दूरी के कोई आँकड़े जारी नहीं किये गये. लगता है कि ऐसी ही जानकारी 2011 की जनगणना में भी प्रचारित की गई थी.

साथ ही ऊपरी तौर पर जो गणना प्रचारित की गई उससे लगता है कि दैनिक यात्रा करने वाले कामगारों की संख्या कम अवधि वाले कामगारों की संख्या की तुलना में अगर अधिक नहीं तो कम से कम इससे दुगुनी तो ज़रूर होगी और किसी एक साल में आप्रवास करने वाले व्यक्तियों की संख्या लगभग आठ गुनी होगी. नब्बे के दशक के बाद दैनिक यात्रियों की संख्या में जो वृद्धि हुई उसका कुछ संबंध तो कदाचित् आर्थिक सुधारों से होगा ही.

आज़ादी के बाद के वर्षो में देखें तो पाएँगे कि लोग वहीं गए जहाँ रोज़गार था. इसका एक उदाहरण तो यही है कि भिलाई जैसे औद्योगिक शहर में जहाँ इस्पात संयंत्र लगाया गया था, बड़े पैमाने पर आप्रवासन भी हुआ. यह प्रवृत्ति अस्सी के दशक तक जारी रही. परंतु औद्योगिक स्थान संबंधी नीति में कुछ शिथिलता आने के कारण नब्बे के दशक अर्थात् सुधार युग के आरंभ से ही अपेक्षाकृत नये ज़िलों में ताज़े निवेश में फैलाव होने लगा. संजय चक्रवर्ती और सॉमिक लाल की पुस्तक ‘‘ मेड इन इंडिया’’ में निवेश के प्रवाह के अनुरूप ही बदलते हुए ज़िलों के क्रम में आए भारी परिवर्तन के प्रमाण दिये गये हैं. उदाहरण के लिए यदि नब्बे के दशक से पहले के क्रम में दुर्ग को रैंकिंग में पहला स्थान मिला तो उससे जुड़े रायपुर ज़िले को सुधार के युग में रैंकिंग में तरजीह मिली. इन गतिविधियों से किसी को हैरानी नहीं हुई, क्योंकि एक नज़रिया यह भी है कि आयात के स्थान पर औद्योगीकरण को बढ़ावा देने वाली नीतियों के कारण बड़े पैमाने पर केंद्रीय महानगरों का विकास हुआ, जबकि खुले बाज़ार से संभवतः इस प्रवृत्ति को बढ़ावा न मिलता. हाल ही के प्रमाणों से यह पता चलता है कि निर्माण संबंधी गतिविधियाँ अब शहरी इलाकों के बजाय ग्रामीण इलाकों में उन्मुख होने लगी हैं. नब्बे के दशक से लोग वहीं जाने लगे थे, जहाँ रोज़गार के अवसर होते थे और यही कारण है कि आप्रवासन की ज़रूरत भी कम होने लगी थी. यातायात में सुधार होने के कारण भी अब उन्हें स्थानांतरण या आप्रवासन के बजाय काम के लिए यात्रा करना आसान लगने लगा, जबकि पहले आप्रवासन आवश्यक होता था. इसका कुछ श्रेय तो अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में चलने वाली राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की सरकार को दिया जाना चाहिए, क्योंकि इसी सरकार ने सड़क मार्ग के निर्माण के लिए निवेश को प्राथमिकता दी. एक दशक के बाद नरेंद्र मोदी की सरकार ने रोज़गार के अवसरों के निर्माण का वायदा किया है. अगर हम मान लेते हैं कि सरकार अपने वायदे को पूरा करती है तो भी इस बात में तो अंतर रहेगा ही कि लोग कहाँ रहेंगे और नौकरी उन्हें कहाँ मिलेगी. इससे एक बार यही सवाल पैदा होगाः आप्रवासन या दैनिक यात्रा?

इस बात की संभावना लगातार बढ़ रही है कि यदि लोगों को विकल्प उपलब्ध हो तो वे आप्रवासन के बजाय दैनिक यात्रा अधिक पसंद करेंगे. क्या कारण है कि लोग आप्रवासन के बजाय दैनिक यात्रा पसंद करते हैं? जिन प्रमुख कारणों से लोग आप्रवासन के बजाय दैनिक यात्रा पसंद करते हैं, उन्हीं कारणों से दैनिक यात्रा को भी लोग नापसंद कर देंगे : ग्रामीण भारत में और छोटे कस्बों में रोज़गार की कमी; शहर की सीमा के ठीक बाहर रोज़गार के अवसरों में बढ़ोतरी; ग्रामीण और शहरी मज़दूरी में अंतर; और औपचारिक (अनौपचारिक) निर्माण क्षेत्र का शहरी क्षेत्रों से ग्रामीण क्षेत्रों में और ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में स्थानांतरण. ग्रामीण क्षेत्रों के निवासियों की दृष्टि से चूँकि ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लाभों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया नहीं जा सकता, इसलिए यदि संभव हो तो आप्रवासन की तुलना में दैनिक यात्रा का आकर्षण कहीं अधिक है. शहरी निवासी आप्रवासन की तुलना में दैनिक यात्रा अधिक पसंद करते हैं, क्योंकि शहरी क्षेत्रों में सुविधाएँ ग्रामीण क्षेत्रों के मुकाबले कहीं अधिक होती हैं.

जहाँ तक कामगारों के आवागमन का सवाल है, हम किसी भी बातचीत में दैनिक यात्रा को आप्रवासन के समकक्ष ही रखते हैं, क्योंकि इन दोनों में से कोई एक अब मात्र पसंद का सवाल नहीं रहा. नई दिल्ली स्थित मानव विकास संस्थान ने पाया है कि चंदकुला (बिहार की राजधानी के पास के एक गाँव) में दैनिक यात्रा अधिक महत्वपूर्ण है, जबकि मनिशम (जो बड़े शहर के नज़दीक नहीं है) में लोग आप्रवासन को अधिक पसंद करते हैं, चंदकुला में कामगार हर रोज़ तीस कि.मी. तक यात्रा करते हैं, जबकि मनिशम में कामगार गाँव के एक किनारे तक ही जाते हैं. चंदकुला के लगभग 25 प्रतिशत पुरुष कामगार आप्रवासन के बिना ही स्थानीय शहरी श्रम बाज़ार का लाभ उठा सकते हैं.

मानव विकास संस्थान के अध्ययन का एक रोचक निष्कर्ष यह भी है कि ‘‘यदि गाँव के अंदर की आमदनी (दैनिक यात्रा को मिलाकर) को देखें तो पाएँगे कि चंदकुला की औसत घरेलू आमदनी मनिशम (जहाँ दैनिक यात्रा अधिक महत्वपूर्ण मानी जाती है) के मुकाबले 78 प्रतिशत अधिक थी. प्रेषण की राशि को जोड़कर तो यह अंतराल घटकर 27 प्रतिशत (ये सारे गाँव का समग्र औसत है, जिसमें आप्रवासी और गैर- आप्रवासी दोनों ही शामिल हैं) रह जाता है. ’’ एनएसएसओ के डैटा से पता चलता है कि दैनिक यात्री ज़्यादा बेहतर स्थिति में रहते हैं. ग्रामीण-शहरी दैनिक यात्रियों का औसत और मध्यम खपत का खर्च उन परिवारों

की तुलना में वहाँ अधिक होता है, जहाँ सभी कामगार साथ रहते हैं, ग्रामीण इलाकों में काम करते हैं और कामगारों के परिवारों के काम का कोई निश्चित ठिकाना नहीं होता.

इंदिरा गाँधी विकास अनुसंधान संस्थान के एक अनुसंधानकर्ता अजय शर्मा द्वारा प. बंगाल के कुछ गाँवों में किये गये एक सर्वेक्षण में पाया गया कि औसतन कोई भी कामगार 28 कि.मी. तक एक तरफ़ की दैनिक यात्रा करता है और इस यात्रा पर उसका खर्च 300/- रु.तक आता है. आधे कामगार तो एक ही तरह की सवारी का इस्तेमाल करते हैं, 15 प्रतिशत कामगार दो तरह की सवारियों का इस्तेमाल करते हैं और शेष कामगार तीन तरह की सवारियों का इस्तेमाल करते हैं. जो सवारी सबसे अधिक इस्तेमाल की जाती है , वह है साइकिल. दो तरह की सवारियों का इस्तेमाल करने वाले कामगार पहली सवारी के रूप में रेलगाड़ी या फिर अपने वाहन का इस्तेमाल करते हैं और फिर बस से यात्रा करते हैं. तीन तरह की सवारियों का इस्तेमाल करने वाले कामगारों ने बताया कि वे अपने घर से साइकिल से निकलते हैं, फिर रेलगाड़ी में बैठते हैं और फिर अंततः अपने कार्यस्थल पर बस या साइकिल से या फिर पैदल ही जाते हैं.

बिहार और पश्चिम बंगाल के निष्कर्षों से दैनिक यात्रा के संबंध में अनुमान ही लगाया जा सकता है. यह एक दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि हमारे पास अभी भी पर्याप्त आँकड़े नहीं हैं. इस अर्थ में यह एक प्रकार का ब्लैक बॉक्स है. इस बारे में कोई सार्थक संवाद करने के लिए हमें अनुमान से ऊपर उठना होगा और दैनिक यात्रा करने वाले कामगारों द्वारा किये जा रहे यात्रा-व्यय और उससे होने वाले लाभ के सही आँकड़े जुटाने होंगे. तभी हमें पता लगेगा कि दैनिक यात्रा में लगने वाले समय को कैसे कम किया जाए और समय की बर्बादी न हो.

एस. चंद्रशेखर इंदिरा गाँधी विकास अनुसंधान केंद्र में एसोसिएट प्रोफ़ेसर हैं और कैसी फ़ॉल (पतझड़) 2014 में विज़िटिंग स्कॉलर हैं. उनसे chandra@igidr.ac.in ***पर संपर्क किया जा सकता है.***

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार <malhotravk@gmail.com> / मोबाइल : 91+9910029919.